लेकिन आज सबसे आगे गान्धी जी ही हैं। अतः उनके तरीक़ों के मूल सिद्धान्तों को समझ कर, उस प्रयोग में शामिल होकर, उसे अधिक से अधिक प्रगतिशील बनाना ही आज का धर्म है।

मुझको आशा है कि नवजवान, वैज्ञानिक जैसा साफ़ दिमाग़ रखकर इसपर विचार करें और प्रयोग में शामिल हों। प्रयोग करते समय अपनी बुद्धि को किसी वेद, पुराण, किसी बाइबिल, क़ुरान या किसी डास कैपिटल की जिल्द के नीचे दबाकर न रखें तभी समाज की प्रगति में वे शामिल हो सकेंगे वर्ना नहीं।

लेखक—

अ० भा० च० स० संयुक्त प्रान्त।

अकबर पुर, फैज़ाबाद।

१—६—४६

खादी की नयी योजना

राष्ट्रीय आन्दोलन और चर्खा

गान्धीजी ने प्रारम्भ से ही चर्खे को राष्ट्रीय आन्दोलन की बुनियाद बताया, राष्ट्रीय आन्दोलन की बागडोर गान्धी जी के हाथ में होने के कारण चर्खा एक राष्ट्रीय कार्य-क्रम हो गया। चर्खा व खादी क्रमशः एक राष्ट्रीय नारा बन गया। चर्खे से स्वराज्य-प्राप्ति के गाने बने और राष्ट्रीय जन खादी पहिनने लगे। यह सब हुआ, लेकिन भिन्न-भिन्न लोग खादी को अलग दृष्टि से देखने लगे कुछ लोगों ने इसे गान्धी जी के नेतृत्व-प्राप्ति की मजदूरी समझा, कुछ ने राष्ट्रीय वर्दी कह कर खादी पहिनी कुछ लोगों को गरीबों को सहारा देने की प्रेरणा हुई और कुछ लोगों ने इसे विलायती कपड़े के बहिष्कार का अस्थायी साधन समझा। इन तमाम नारों के बीच गान्धी जी का मूल उद्देश्य पीछे पड़ गया। गान्धी जी तो चर्खे द्वारा उस संघटन की बुनियाद डालना चाहते थे जो न सिर्फ स्वराज्य की प्राप्ति का साधन होगा, बल्कि आगे चलकर भारतीय स्वतन्त्रता और भारत के द्वारा मानव समाज की स्वतन्त्रता की बुनियाद बनेगा। लेकिन भारत के अधिकांश राष्ट्रीय जनों ने इस

लेकिन आज सबसे आगे गान्धी जी ही हैं। अतः उनके तरीक़ों के मूल सिद्धान्तों को समझ कर, उस प्रयोग में शामिल होकर, उसे अधिक से अधिक प्रगतिशील बनाना ही आज का धर्म है।

मुझको आशा है कि नवजवान, वैज्ञानिक जैसा साफ़ दिमाग़ रखकर इसपर विचार करें और प्रयोग में शामिल हों। प्रयोग करते समय अपनी बुद्धि को किसी वेद, पुराण, किसी बाइबिल, कुरान या किसी डास कैपिटल की जिल्द के नीचे दबाकर न रखें तभी समाज की प्रगति में वे शामिल हो सकेंगे वर्ना नहीं।

लेखक—

अ० भा० च० स० संयुक्त प्रान्त।

अकबर पुर, फैजाबाद।

१—६—४६

खादी की नयी योजना

राष्ट्रीय आन्दोलन और चर्खा

गान्धीजी ने प्रारम्भ से ही चर्खे को राष्ट्रीय आन्दोलन की बुनियाद बताया, राष्ट्रीय आन्दोलन की बागडोर गान्धी जी के हाथ में होने के कारण चर्खा एक राष्ट्रीय कार्य-क्रम हो गया। चर्खा व खादी क्रमशः एक राष्ट्रीय नारा बन गया। चर्खे से स्वराज्य-प्राप्ति के गाने बने और राष्ट्रीय जन खादी पहिनने लगे। यह सब हुआ, लेकिन भिन्न-भिन्न लोग खादी को अलग दृष्टि से देखने लगे। कुछ लोगों ने इसे गान्धी जी के नेतृत्व-प्राप्ति की मजदूरी समझा, कुछ ने राष्ट्रीय वर्दी कह कर खादी पहिनी, कुछ लोगों को गरीबों को सहारा देने की प्रेरणा हुई, और कुछ लोगों ने इसे विलायती कपड़े के बहिष्कार का अस्थायी साधन समझा। इन तमाम नारों के बीच गान्धी जी का मूल उद्देश्य पीछे पड़ गया। गान्धी जी तो चर्खे द्वारा उस संघटन की बुनियाद डालना चाहते थे जो न सिर्फ स्वराज्य की प्राप्ति का साधन होगा, बल्कि आगे चलकर भारतीय स्वतन्त्रता और भारत के द्वारा मानव समाज की स्वतन्त्रता की बुनियाद बनेगा। लेकिन भारत के अधिकांश राष्ट्रीय जनों ने इस

दृष्टिकोण को ठीक-ठीक नहीं समझा और वे चर्खे के
तरह-तरह के तात्कालिक उपयोगों के प्रति ही ध्यान
देने लगे। फलतः सन् १९२१ के शुरू के आन्दोलन के
समय चर्खा देश के राष्ट्रीय आन्दोलन की बुनियाद न
बनकर राष्ट्रीय आन्दोलन ही चर्खा कार्य की बुनियाद
बन गया, और सन् १९२३ से राष्ट्रीय आन्दोलन की
शिथिलता के साथ-साथ चर्खे का कार्य-क्रम भी शिथिल
होगया।

चर्खा संघ की स्थापना

गान्धी जी उस समय जेल में थे। इस परिस्थिति में
उनसे आदेश पाना सम्भव नहीं था। अतः कांग्रेस के
उन लोगों ने जो गान्धी जी की कार्य-पद्धति और उनकी
विचारधारा में विश्वास रखते थे अपने को चर्खा और
खादी कार्य में पूर्णतः लगा दिया। जगह जगह खादी
संस्थाएं बन गयीं, देश में सरकार से लड़ाई का कोई
प्रत्यक्ष कार्य-क्रम नहीं रह गया था। अतः कांग्रेस को भी
आवश्यकता थी किसी ऐसे कार्य-क्रम की जो राष्ट्रीय
शक्ति को ऐसी दिशा में मोड़ दे जिससे सार्वजनिक
हित के साथ-साथ राष्ट्र के नैतिक अधःपात को रोक
कर मुल्क को संघटन तथा अनुशासन की ओर ले जा
सके। फलस्वरूप कांग्रेस ने भी इस कार्य-क्रम को अप
नाया और इसे अधिक महत्त्व देने के लिये अखिल
भारत खादी बोर्ड की स्थापना की।

गान्धी जी जब जेल से छूट कर आये तो उन्होंने देखा कि खादी आन्दोलन को इस प्रकार की अस्थायी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही इस्तेमाल करने से चर्खे का मूल उद्देश्य सफल न होगा। वे चर्खे के अन्तिम उद्देश्य की ओर प्रगति करनेवाली एक स्थायी संस्था की आवश्यकता का अनुभव करते थे। अतः उनकी प्रेरणा से कांग्रेस ने सन् १९२५ में एक प्रस्ताव करके अखिल भारत चर्खा संघ की स्थापना की।

चर्खासंघ की स्थापना के समय गान्धी जी ने खादी कार्यकर्ताओं से संघ के लक्ष्य और उसके संघटन के सम्बन्ध में विस्तार के साथ बातें कीं तथा अपना दृष्टि-कोण कार्यकर्ताओं को समझाने की चेष्टा की। उन्होंने बताया कि खादी का कार्य-क्रम आज जहाँ जनसमूह को स्वराज्य आन्दोलन के लिए जाग्रत और संघटित करने का मूल साधन है वहाँ इसी के आधार पर वे उस समाज की स्थापना करने की व्यवस्था करना चाहते हैं जो हिंसा और शोषण से मुक्त होकर मानवता का वास्तविक कल्याण और उसकी सच्ची स्वतन्त्रता का प्रवर्तक और परिपोषक हो।

खादी के प्रति शंका

इस प्रकार सन् १९२५ से राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग स्वतन्त्र स्थिति में पहले पहल संघटित रूप में चर्खा संघ द्वारा खादी आन्दोलन की शुरुआत हुई। देश ने

किसानों से सूत कतवा कर मजदूरी देना, उनके सूत की उन्नति करना, अच्छी से अच्छी खादी बनवाकर शहर के लोगों को देना, सफल व्यापारिक संघटन करना आदि कामों की ओर ही चर्खासंघ का पूरा ध्यान रहा। इस काम में सारे कार्य-कर्ता एकाग्रता से लग गये। धीरे-धीरे यह बात सिद्ध होने लगी कि चर्खे से काफी कपड़ा बन सकता है और काफी आवश्यकता की पूर्ति की जा सकती है। जिन लोगों को यह सन्देह था कि चर्खे से सुन्दर और सुरुचिपूर्ण कपड़े का निर्माण नहीं हो सकता है उनका भी सन्देह दूर होने लगा। किसान जनता भी यह समझने लगी कि चर्खे से भी कुछ आर्थिक समस्या हल हो सकती है, क्योंकि भारत की औसत आमदनी जहां ६ पैसे रोज के करीब है वहां चर्खा चलानेवालों को खाली दिनों में ३ पैसे की आमदनी भी कम महत्त्व नहीं रखती। इस प्रकार प्रायः दश वर्ष तक चर्खासंघ के कार्यकर्ता जनता की आरम्भिक शंकाओं को दूर करने में लगे रहे, जिसके फलस्वरूप यह काम काफी उन्नत हुआ और देश की जनता तथा राष्ट्रीय जन इसे अधिक गम्भीरतापूर्वक देखने लगे।

चर्खे से बेकारी दूर करने की ओर क़दम

गान्धी जी को चर्खा आन्दोलन को उसके अन्तिम ध्येय तक ले जाना था। उन्हें यह प्राथमिक सफलता कहां सन्तोष दे सकती थी? उन्हें तो चर्खा की सर्वतो

मुखी शक्ति का प्रयोग करना था। इसलिए अब उन्हें
चर्खे को बेकारी की समस्या को हल करने के साधन
रूप में सफल बनाने की बात पेश की। जब चर्खा ए
सहायक धन्धे के रूप में चलाया जाता था या उस
परोपकार की दृष्टि थी उस समय मजदूरी के रूप
कुछ मिल जाता है इतना ही काफी था, पर जबकि य
देखना था कि चर्खा बेकारी की समस्या हल कर सकत
है या नहीं तो उसमें यह भी विचार करना था कि
उससे मिलनेवाली मजदूरी कितनी हो, क्योंकि का
के दिनों में लोगों को जितनी मजदूरी मिलती है अग
चर्खा से उतनी ही मजदूरी न मिल सके तो वह कैसे
कहा जा सकता है कि उससे बेकारी दूर हुई। साथ ही
प्रश्न यह भी था कि काम के दिन की मजदूरी भी
कितनी हो। देश में अब तक मजदूरी के मामले में तो
काफी विषमता है। खेत में काम करनेवाले मजदूर की
एक या डेढ़ रुपये मासिक मजदूरी और बड़े लाट के
२२,०००) मासिक वेतन में कितनी विषमता है, यह
सभी समझ सकते हैं। बापूजी तो समाज में मजदूरी
के विनिमय-मूल्य में सामंजस्य लाना चाहते हैं, इसलिए
सन् १९३४ में जेल से निकल कर उन्होंने ऐलान किया
कि प्रत्येक श्रमिक को ८ घंटे ईमानदारी से श्रम करने
का दाम कम से कम ८ आना होना चाहिये। इससे
पहले ही बापू की प्रेरणा से कांग्रेस ने यह निश्चय
कर दिया था कि भारत में अधिक से अधिक वेतन

५०० रु० मासिक होना चाहिये। अब वे यह चाहते थे कि कमसे कम मजदूरी की सीमा भी १५) तै हो जाय।

मजदूरी का प्रश्न

गान्धी जी के इस ऐलान से खादीसेवकों में बहुत घबड़ाहट पैदा हुई। उनके ख्याल से उस समय की आर्थिक स्थिति में अगर वे ॥) मजदूरी देते तो खादी इतनी महंगी हो जाती कि उसके लिए ग्राहक ही नहीं मिलते तो फिर मजदूरी देते कहाँ से ? उनकी राय में मजदूरी तो तभी दी जा सकती थी जबकि उस बढ़े हुए दाम पर खादी बिकना सम्भव हो। ८ आना मजदूरी करने के विरोध में यह दलील प्रायः सभी कार्यकर्ताओं ने गांधी जी के सामने पेश की। इसके विपरीत बापूजी का यह विश्वास था कि राष्ट्रीय जनों में न्याय की भावना इतनी आ गयी है कि वे इतनी मजदूरी देने में एतराज नहीं करेंगे और खादी भी बिकती रहेगी। लेकिन देश भरके खादी-सेवकोंको यह विश्वास नहीं हो सका। तब यह तय हुआ कि खेतों में जितनी मजदूरी मिलती है उतना तो तुरन्त दिया जाय और हर प्रान्त अपनी परिस्थिति के अनुसार ८ आना मजदूरी देने की ओर बढ़ने का प्रयत्न करे। बाद को सभी प्रान्तों में कमसे कम ३ आना प्रतिदिन की दर से मजदूरी देने का निश्चय हुआ।

संसारव्यापी बेकारी की समस्या

गांधी जी जो कार्य-क्रम बनाते हैं वह उनकी स्वाभाविक न्यायबुद्धि से होता है। उनका हर कदम अपना अन्तिम ध्येय अहिंसात्मक समाज-रचना की दिशा में ही होता है। उनका जीवन मानवता के साथ इतना ओत-प्रोत हो गया है कि वे अपनी अन्तः प्रेरणा से जो भी कदम उठाते हैं वह संसार की तत्कालीन समस्याओं से सम्बन्धित होता है, चाहे उन्होंने अपना कदम उठाते समय उन समस्याओं का विचार किया हो या न किया हो। सन् १९३०,३१ की मन्दी के कारण उन दिनों संसार में बेकारों की समस्या जटिल होती जाती थी। बड़े बड़े देशों की सरकारें इस समस्या को न सुलझा सकने के कारण टूटती और बनती थीं। वे इस संकटपूर्ण समस्या का कोई हल न निकाल पाते थे। मन्दी और उत्पत्ति की अधिकता के कारण दुनियाँ भर में मजदूरी का झगड़ा खड़ा हो गया था। सभी मुल्कों में बेकारी और मजदूरी की समस्या हल करने के लिए कमेटियों और कमीशनों की स्थापना की जा रही थी। ठीक इसी समय गान्धी जी ने चर्खे द्वारा बेकारी हल करने का और जीवन-मज़-दूरी का सवाल पेश किया। स्वभावतः सारे देश की दृष्टि इस प्रश्न की ओर आकर्षित हुई, और लोगों ने इसके बुनियादी सिद्धान्तों को स्वीकार भी किया। अतः ३ आना मजदूरी के कारण खादी जो महँगी हुई उसे खादी

प्रेमियों ने बर्दाश्त किया, और खादी की बिक्री घटने के बजाय बढ़ती ही गयी।

खादी के प्रकार में उन्नति

तीन आने मज़दूरी के प्रयोग से खादी कार्यक्रम में एक नयी दृष्टि आ गयी। खादीका दाम बढ़ने से चर्खासंघ पर यह जिम्मेदारी भी आ गयी कि खादी अच्छी और मजबूत हो। अतः कत्तिनों को वैज्ञानिक शिक्षा देने की व्यवस्था की गयी। इस शिक्षाकाल में खादीसेवकों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आने के कारण कत्तिनों में सैद्धान्तिक तथा राष्ट्रीय दृष्टिकोण बढ़ने लगा। जनता में राष्ट्रीय, जागृति भी साथ साथ होती गयी। इस प्रकार मजदूरी बढ़ाने का कार्यक्रम आगे बढ़ रहा था कि सन् १९४२ के अगस्त महीने में देशपर सरकारी हमला हो गया। जनता ने भी रक्षात्मक आन्दोलन शुरू किया और सरकार ने राष्ट्रीय आन्दोलन का दमन करने के प्रयत्न में खादी के काम को भी नष्ट भ्रष्ट कर डाला।

खादी का नया कार्यक्रम

सन् १९४४ में गान्धीजी जेल से निकले। कुछ दिनों में चर्खासंघ के अधिकतर कार्यकर्ता भी छूट कर आ-गये। खादी कार्य को पुनः संघटित करने की बात आयी। गान्धीजी ने देखा कि अभी तक चर्खा राजनीति का आधार न बनकर राजनीति ही चर्खा का आधार बनी हुई है, और सरकार के लिए राजनीतिक कारण से

चर्खा कार्य को भी नष्ट करना सम्भव हो गया। अतः इस बार पुनः संघटन के कार्य को उन्होंने चर्खा के अन्तिम ध्येय को सामने रखकर आरम्भ करना उचित समझा। खादी कार्य की प्रगति की दृष्टि से आखिरी कदम उठाने की बारी भी अब आ गयी थी। चर्खा कपड़ा बनाने का साधन और बेकारी की समस्या हल करने के साधन के रूप में प्रयोग में आ चुका था और उस रूप में उसे अपना स्थान प्राप्त हो चुका था। अब आवश्यकता यह थी कि चर्खे को स्वराज्य-प्राप्ति तथा स्वराज्य के संघटन के साधन के रूप में कामयाब किया जाय। अतः गान्धीजी ने चर्खासंघ के सामने संघ का ध्येय तथा कार्यक्रम में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने का प्रस्ताव रखा, जो मुख्यतः इस प्रकार था।

१—संघ की कार्यपद्धति को विकेन्द्रित किया जाय और उत्पत्ति स्वावलम्बन के उद्देश्य से ही की जाय।

२—संघ का उद्देश्य चर्खा को केन्द्र मानकर गांव की समग्र सेवा करना है और यह सेवा गांव के मानव की मन, बुद्धि तथा व्यवस्था के द्वारा करनी है।

३—खादी सूत के बदले में ही दी जाय अर्थात् खद्दर पहिननेवाले खुद कताई करें। यह काम दो पैसा प्रति अथवा खादी का दाम सूत में देने के नियम से शुरू किया गया।

४—यह सब काम अहिंसात्मक स्वावलम्बी समाज-

रचना की दृष्टि से किया जाय और चर्खासंघ, ग्रामोद्योगसंघ, तालीमीसंघ आदि सब मिलकर इसे करें।

खादी कार्य के इस नव-संस्करण के पीछे तीन मुख्य बातें दिखाई देती हैं। प्रथमतः इस कार्यक्रम द्वारा गांधी जी अभी से उस संघटन की बुनियाद डालना चाहते हैं जो न सिर्फ भारतीय स्वतन्त्रता की इमारत का आधार बनेगा जो हिंसा और शोषण से मुक्त होकर मानवता के वास्तविक कल्याण और प्रजातन्त्र का प्रवर्तक और परिपोषक होगा।

वर्तमान समाज और मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति

संसार में आज जिस कदर तानाशाही राष्ट्रवाद 'टोटलिटेरियनिज्म' का बोलवाला हो रहा है उससे मानवता जर्जरित है। केन्द्रीय शासन की इस प्रकार की सर्वाधिकारी प्रवृत्ति ने प्रजा की स्वतन्त्रता को लेशमात्र भी बाकी नहीं छोड़ा है। आज लोकतन्त्रवादी, फासिस्टवादी और समष्टिवादी सभी राष्ट्र विराट एकाधिपत्य स्थापित कर मानव स्वतन्त्रता के निर्दलन में लगे हुए हैं। गान्धीजी प्रजा की इस दयनीय दशा को देखते रहे। और इस परिस्थिति को बदलने का उपाय ढूंढते रहे इस खोज के सिलसिले में गान्धीजी ने देखा कि समाज के स्वरूप की प्रगति मनुष्य के जिन्दा रहने की

चेष्टा के अनुरूप ही हुआ करती है। जिन्दा रहने की चेष्टा का मतलब है जिन्दगी की आवश्यकताओं की उत्पत्ति का प्रकार। अतः उन्होंने देखा कि जबतक प्रजा अपनी जिन्दगी की आवश्यकताओं की उत्पत्ति अपनी व्यवस्था और साधन से न करेगी तबतक वह स्वतन्त्र नहीं हो सकती। केन्द्रित उत्पत्ति के प्रकार में उत्पत्ति के साधन और तरीके केन्द्रित होने के कारण व्यवस्था को कुछ थोड़े लोगों के हाथ में केन्द्रित करना जरूरी हो जाता है। मनुष्य के प्रभुत्व करने की साधारण प्रवृत्ति के कारण ऐसी स्थिति में केन्द्रीय उत्पत्ति के व्यवस्थापक स्वयं प्रभु बन जाने की चेष्टा करते हैं और जिन्दगी की आवश्यकताओं का साधन उनके हाथ में होने से प्रजा को अपने अधिकार के नीचे कर लेना उनके लिए आसान हो जाता है। प्रजा चाहे जितनी स्वतन्त्रताप्रेमी क्यों न हो उसकी स्वतन्त्रता-प्रेम से जिन्दा रहने की प्रवृत्ति अधिक जोरदार हुआ करती है, क्योंकि सृष्टि की मूल प्रवृत्ति अपनी स्थिति को कायम रखना यानी जिन्दा रहना है। अतः व्यवस्थापक के प्रभुत्व की चेष्टा को रोकने के लिए जब प्रजा उनसे लड़ाई छेड़ती है और वह देखती है कि जिन्दा रहने के साधन के लिए वह उन्हीं व्यवस्थापकों की मुहताज है, तो उसका स्वतन्त्रता-प्रेम कुण्ठित हो जाता है और वह कामचलाऊ वैधानिक समझौता करके जिन्दा रहने का प्रयत्न करती है, इस प्रकार केन्द्रित उत्पत्ति के तरीके से प्रजा की स्वतन्त्रता

की रक्षा नहीं हो पाती है। नतीजा यह होता है कि केन्द्रीय व्यवस्थापक क्रमशः ज़िन्दगी के हर पहलू पर क़ाबिज़ होकर सारे समाज में तानाशाही तन्त्र का संघटन कर लेते हैं।

विकेन्द्रित उत्पत्ति से प्रजा की स्वतन्त्रता की रक्षा

गान्धीजी मानव समाज के आज के बढ़ते हुए केन्द्रिय अधिनायक तन्त्र का विघटन केन्द्रीय उद्योगवाद को ही विघटित करके करना चाहते हैं। वे उत्पत्ति के साधन तथा तरीक़े को केन्द्रित रहने देकर शक्ति को केन्द्रित रखते हुए वैज्ञानिक तरीके से प्रजा को कानूनी हक़ दिलाना नहीं चाहते हैं, क्योंकि वैसा हक कचहरी से डिग्री पाया हुआ ज़मीन पर कब्ज़ा न पाने वाले ज़मीन के मालिक की तरह उत्पत्ति पर प्रजा का प्रभुत्व वास्तविक न होकर लाक्षणिक हो जायगा। वे उत्पत्ति के तमाम साधनों को ही विकेन्द्रित करके उन्हें प्रत्यक्ष रूप से प्रजा के हाथ में दे देना चाहते हैं, ताकि समाज के केन्द्रीय व्यवस्थापक प्रजा के हाथ से सत्ता छीनने की ज्योंही चेष्टा करें त्यों ही प्रजा उनसे असहयोग करके उसे विफल कर सके। यही कारण है कि गान्धीजी चर्खा को केन्द्र मान कर मनुष्य की ज़िन्दा रहने के लिए आवश्यक प्राथमिक तथा अनिवार्य वस्तुओं की उत्पत्ति प्रजा को खुद प्रत्यक्ष रूप से कर लेने की सलाह देते हैं, ताकि वह अपनी सत्ता की रक्षा करने की शक्ति हमेशा

अपने ही हाथों में रख सके। जिन लोगों को अहिंसा की बात ठीक ठीक समझ में नहीं आती है और जो समाज का संघटन हिंसा के आधार पर ही होना सम्भव समझते हैं, वे भी आदर्श प्रजातन्त्रवादी सरकार द्वारा भी प्रजा के हाथ से बन्दूक छीन कर सरकारी शस्त्रागार में केन्द्रित करने की चेष्टा का विरोध करते हैं। ऐसा वे इसीलिए करते हैं कि अगर कभी जनता का प्रतिनिधित्व करनेवाली सरकार भी प्रभुत्व के लालच में प्रजासत्ता का निर्दलन करना चाहे तो प्रजा अपने पास रक्षित अस्त्र से अपनी सत्ता की रक्षा कर सके। गान्धीजी की दृष्टि में केन्द्रित उत्पत्ति के प्रकार में घरेलू उद्योग धन्धों का साधन नष्ट हो जाता इस प्रकार प्रजा का आर्थिक निरस्त्रीकरण हो जाता है और इस प्रकार जब केन्द्रीय उद्योग के व्यवस्थापक प्रभु शक्ति को प्रजा से छीनकर अपने हाथ में लेना चाहते हैं तो प्रजा में सत्याग्रह या अहिंसात्मक असहयोग करने की शक्ति नहीं रह जाती और वह केन्द्रीय शक्ति से समझौता करने के लिए मजबूर हो जाती है।

अहिंसात्मक समाज का आदर्श

गान्धीजी खादी की नयी योजना द्वारा इसी उद्देश्य से विकेन्द्रित स्वावलम्बी समाज यानी अहिंसात्मक समाज संगठन की दिशा में निरन्तर कदम बढ़ाना चाहते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मुख्यतः दो बातों

की आवश्यकता है। प्रथमतः समाज का नेतृत्व सीधा जनता का ही हो क्योंकि बिना अपने नेतृत्व के जनता की व्यवस्था स्वावलम्बी हो ही नहीं सकती। दूसरी बात यह है कि कार्यक्रम इस प्रकार का हो कि जिससे व्यक्ति और समाज में अहिंसात्मक प्रवृत्ति का विकास हो सके। वास्तव में यदि शासनहीन समाज की स्थापना करनी है तो समाज में निःस्वार्थ और अहिंसात्मक वृति का विकास आवश्यक है, बिना इसके समाज में स्वावलम्बन आ ही नहीं सकता।

अहिंसात्मक समाज की स्थापना की ओर पहला कदम

गान्धीजी समाज में किसी प्रकार का परिवर्तन अहिंसात्मक तरीकों से ही करते हैं। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के रास्ते में एक कदम उठाकर जब वह कदम खूब मजबूत हो जाता है तभी वे दूसरा कदम उठाते हैं। जनता का नेतृत्व स्थापित करने की ओर जाने में भी उनका यही तरीका रहा है। सन् १९२१ में गांधीजी ने देखा कि देश का नेतृत्व ऐसे लोगों के हाथ में है जिनसे जनता का कोई सम्पर्क नहीं है। कुछ रईस श्रेणी के लोग अंग्रेजी सरकार से सहूलियतें पाने की कोशिश करते हैं। इससे कुछ पढ़ेलिखे ऊंचे तपके के लोगों में जागृति आ रही थी लेकिन मुल्क की असली जनता से नेतृत्व का कोई सम्पर्क न रहने से उसकी बेहोशी ज्यों की त्यों बनी हुई थी, जबतक जनता में जागृति

साल तक जन-जागृति का कार्यक्रम चलाया और रच-नात्मक कार्यक्रम द्वारा जन सम्पर्क तथा जनशक्ति में वृद्धि करके समय समय पर असहयोग और सत्याग्रह आन्दोलनों द्वारा जनता में जागृति तथा आत्मविश्वास पैदा करते रहे। सन् १६४२ में जनता द्वारा सरकारी हमले के स्वाभाविक और व्यापक विरोध से यह साफ हो गया कि जिस उद्देश्य से नेतृत्व को बदल कर नीचे की श्रेणी में लाया गया था वह पूर्णतया सफल हुआ। आज कोई यह नहीं कह सकता कि भारत की जनता किसी तरह बेहोश है। अब आवश्यकता इस बात की है कि सीधे जनता की ओर से तथा जनता द्वारा संघटित रूपसे सक्रिय व संयोजित आन्दोलन चले। वरना केवल जागृति से समाज कुछ निश्चित तथा स्थायी प्रगति नहीं कर सकता है और न मुल्क आजादी प्राप्ति की ओर ही बढ़ सकता है। अतः गान्धी जी अपना तात्कालिक लक्ष्य भारत की आजादी प्राप्त करना और अन्तिम ध्येय संसार में विकेंद्रित स्वावलम्बी समाज व्यवस्था का संघटन, इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिये खादी की नयी योजना द्वारा आज जन-जागृति के लिए संघटित बाबू नेतृत्व को भी बदल कर सीधा जनता का यानी किसान और मजदूर का नेतृत्व क़ायम करने की ओर निश्चित क़दम रख रहे हैं।

जनता का नेतृत्व

बाबू नेतृत्व को बदल कर जन-नेतृत्व क़ायम करने

के लिए गांधी जी वही अहिंसात्मक और स्वाभाविक तरीका काम में ला रहे हैं जो वे सन् १९२१ में काम में लाते थे। आज वे बाबू श्रेणी के लोगों से अपील कर रहे हैं कि वे अपनी श्रेणी का रंग बदल कर गाँव में जाकर किसान और मजदूर जैसा बनकर उनमें मिलकर और अपने को उनका स्वजन बनाकर उनमें व्यक्तित्व का विकास करें। अर्थात् वे फिर से वही दही जमाने का हिसाब लगाना चाहते हैं। वे कहते हैं कि ग्रामसेवक गाँव में किसान मजदूर बनकर बैठे और ग्रामीण जनता में उन्हीं के साधन तथा व्यवस्था से उनकी सर्वांगीण प्रगति का कार्य-क्रम चलावे। वस्त्रस्वावलम्बन योजना के साथ, कृषि, गोपालन, शिक्षा, संस्कृति, सफाई आदि की व्यवस्था जब जनता अपने साधन तथा व्यवस्था से करने लगेगी तो गांव में स्वाभाविक नेतृत्व का विकास अपने आप होता जायगा। स्वाभाविक बात है कि जिस प्रकार सन् १९२१ में [illegible] वर्ग के जिन लोगों ने अपनी [illegible] छोड़ कर बाबू वर्ग में आकर जो [illegible] था उससे और असहयोग आन्दोलन के फलस्वरूप बाबू वर्ग से निकले हुए कार्यकर्ताओं का स्वाभाविक नेतृत्व [illegible]

कार्यक्रम का सहज नतीजा समाज में एकही वर्ग यानी किसान और मजदूर का होना है। अर्थात् समाज श्रमिकों का यानी उत्पादकों का एक वर्गहीन समूह मात्र रह जाता है। गान्धी जी आज लोगों को अपनी बाबू गिरी छोड़कर गाँव के शारीरिक श्रम करनेवालों में जाकर उन्हीं के जैसे रहने की अपील कर रहे हैं और उसकी तैयारी में अपने असर की सभी संस्थाओं में शारीरिक श्रम का स्थान सबसे ऊँचा रखते हैं। यह समाज को वर्गहीन करने के लिए लोगों को वर्गत्यक्त (डीक्लासड) कराने का एक निश्चित कदम है। सवाल यह है कि केवल इस अपील से कितने लोग स्वेच्छा से ऐसा करेंगे? जिन्होंने स्वेच्छा से ऐसा नहीं किया उनका क्या होगा? पहिले ही कहा गया है कि गान्धी जी का हर सवाल को हल करने का तरीका अहिंसात्मक होता है। अगर बाकी लोगों के साथ हिंसात्मक तरीके से पेश आना हो तो फिर वही करना होगा जो जर्मनी में यहूदी, रूस में कुलक या दूसरे बाबू वर्ग के लोगों के साथ किया गया है। लेकिन गान्धी जी का अहिंसात्मक हल क्रमशः और निश्चित कदम से होता है। प्रथम और सबसे शक्तिशाली कदम तो स्वेच्छा से त्याग कराकर लोगों को आगे बढ़ाना है। दूसरी चेष्टा इससे हल्की है लेकिन वह भी नैतिक है। वह है उनकी प्रत्येक मनुष्य से किसी न किसी अंश में शारीरिक श्रम द्वारा बुनियादी आवश्यकताओं के किसी न किसी

हिस्से की उत्पत्ति खुद करने की अपील। मनुष्य का आर्थिक विभाजन दो ही हो सकता है—१. या तो वह सामाजिक उत्पत्ति में शामिल है या २. वह परोपजीवी है। अगर समाज में श्रमिकों का यानी उत्पादकों का एक वर्ग होना है तो हर एक को उत्पादक बनना है इस सिलसिले में यह समझ लेना चाहिये कि साधारणतः लोग श्रमिकों में बौद्धिक श्रम करनेवाले और शारीरिक श्रम करनेवाले ऐसा जो दो विभाग करते हैं गान्धीजी के यहाँ उसका कोई स्थान नहीं है। शारीरिक श्रम करनेवाले और बौद्धिक श्रम करनेवाले, दोनों एक ही वर्ग के हैं यह कहना निरा शब्द जाल है, इसमें वास्तविकता का लेशमात्र भी नहीं है। इसी आधार पर गान्धीजी ने खादी की नयी योजना में यह नियम रखा कि जो कोई खादी खरीदे वह शुरू में कम से कम दो दो पैसे का सूत प्रति रुपये की खादी के लिए कात कर दे और देश भर में 'जो काते सो पहिने' और 'जो पहिने सो काते' का नारा बुलन्द किया। यह ठीक है कि यह क़दम बहुत हल्का और लाक्षणिक है। वस्तुतः एक रुपये की खादी के लिए दो पैसे के सूत के लिए कताई करने में कुछ बाबूगिरी ख़तम नहीं हो जाती है। लेकिन इतना करना लाजिमी बनाकर उन्होंने लोगों के दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया है। इस छोटी सी बात से उन्होंने परोपजीवी लोगों को उत्पादकों के साथ नैतिक एकता लाने का रास्ता बता दिया।

इस प्रक्रिया को बढ़ाकर उक्त दिशा में प्रगति करने का विचार तो है ही।

वर्ग-हीन समाज-रचना की दिशा में गान्धी जी का तीसरा क़दम बहुत व्यापक और व्यवस्थित है। वस्तुतः यह क़दम क़रीब क़रीब आखिरी ही है। लोग इसे गान्धी जी की आख़िरी नादानी भी कहते हैं। यह है उनकी नयी तालीम की योजना। इस योजना में उन्होंने सामाजिक उत्पत्ति को ही तालीम का ज़रिया बनाया है, इस ढंग की तालीम में जो कोई शिक्षित होगा उसे मुख्यतः उत्पादक बनना पड़ेगा। अर्थात् बुद्धि की प्रधानता रखनेवाले व्यक्ति को भी शारीरिक श्रम करके उत्पत्ति में भाग लेना होगा और तालीम सार्वजनिक और सुलभ हो जाने के कारण प्रत्येक शारीरिक श्रम-प्रधान उत्पादक का बौद्धिक विकास सहज ही होता जायगा। यह कहा जाता है कि सम्पत्ति का समान बंटवारा होना चाहिये। लेकिन मनुष्य की सम्पत्ति केवल रोटी ही तो नहीं है, रोटी के बंटवारे में सामंजस्य तो होना ही है। उसके अलावा शिक्षा, संस्कृति, कला-कौशल, बुद्धि, आध्यात्मिकता, सभी का समान बंटवारा जरूरी है, फिर दुनियाँ में अधिकार के साथ साथ जिम्मेदारी भी तो छाया की भाँति साथही रहती है। अतः अगर सम्पत्ति का समान बंटवारा इष्ट है तो सारी सम्पत्ति के उत्पादन की जिम्मेदारी का समान बंटवारा भी जरूरी है। यही कारण है कि गान्धीजी की कल्पना

स्वभावतः समाज की वर्गहीनता पर जाकर लीन हो जाती है। इस प्रकार जैसे गान्धी जी विकेन्द्रित आर्थिक व्यवस्था द्वारा केन्द्रीय शासन तन्त्र के काम के दायरे घटाकर और प्रजाकी प्रत्यक्ष तथा स्वावलम्बी व्यवस्था को बढ़ाकर शासन को विघटित करते हुए और स्वावलम्बन को संघटित करते हुए समाज को शासन हीनत की ओर लेजाने की चेष्टा कर रहे हैं उसी तरह प्रत्येक मनुष्य को उत्पादन की जिम्मेदारी देकर श्रमिकों के वर्गहीन समाज की ओर सारी दुनियाँ को लेजाने की कोशिश कर रहे हैं यह है क्रान्ति का अहिंसात्मक तरीका।

नवयुवकों की अधीरता

देश के उत्साही युवक-युवतियाँ कुछ अधीर होती हैं। उनमें सब्र कुछ कम है। उनका कहना है कि यह सबतो अन्तिम ध्येय की प्राप्ति के लिए एक लम्बी योजना है। हमारा तात्कालिक उद्देश्य है मुल्क को आज़ाद करना, हमारे कन्धेपर से जब विदेशी हट जायँगे तभी शान्ति से इन बातों को हम सोच सकेंगे। वस्तुतः गान्धी जी के लिए अन्तिम और तात्कालिक नाम से कोई दो ध्येय नहीं हैं। उनका एक मात्र ध्येय संसार भर की हिंसा-रहित, शोषण-रहित प्रजातन्त्रता है। भारत को विदेशी सत्ता से मुक्त करना उस ध्येय की प्राप्ति की एक सीढ़ी मात्र है। आखिर वे नौजवान कहना क्या चाहते हैं? क्या सिर्फ जनता की जागृति से ही आज़ादी हासिल हो

कि सेवक जनता में सहयोग वृत्ति का विकास करके उनको संघटित करे। इस प्रकार नयी योजना द्वारा गान्धीजी व्यक्ति और समाज में प्रेम और सहयोग वृत्ति का अभ्यास कराकर अहिंसा की भावना को व्यापक और स्थायी बनाना चाहते हैं ताकि विद्रोह की आवश्यकता के समय जनता में अहिंसा की नींव मजबूत रह सके, साथ ही अहिंसा के क्रमशः विकास से समाज की स्वावलम्बी व्यवस्था में स्थिरता आकर शासन की आवश्यकता को शून्यता की ओर ले जा सकें।

क्रान्ति की उथल-पुथल

कुछ लोग यह पूछते हैं कि जब आज विदेशी सरकार का बोझ अपने ऊपर इतने भयानक रूप में लदा हुआ है तो इतनी गहराई की योजना की आवश्यकता क्या है? क्रान्ति सफल होने पर धीरे धीरे हर प्रकार का संघटन होता रहेगा। वे भूल जाते हैं कि अहिंसा की कला ही यह है कि बुराई का विघटन और भलाई का संघटन साथ ही साथ होता जाय फिर इतिहास बताता है कि जब कभी क्रान्ति सफल होने लगती है तो देश में एक प्रकार का घपला पैदा होता है और कभी कभी यह घपला इतनी गहराई का हो जाता है कि उसके पेट में से जबर्दस्त प्रति-क्रान्ति पैदा होकर स्थिति पर इस कदर हावी हो जाती है कि सफल क्रान्ति भी विफल होने लगती है। गान्धीजी मुल्क को ऐसी स्थिति के लिए अभी से तैयार करना चाहते हैं।

पूंजीवाद का खतरा

वस्तुतः अगर विकेन्द्रित स्वावलम्बी आर्थिक तथा सामाजिक व्यवस्था का संघटन करना है तो उसके। आज के जैसा अनुकूल अवसर कभी नहीं रहा है। पिछले पांच साल से संसार में अधिनायक तन्त्रवाद जिस तरह सर उठाये हुए है वैसा इतिहास में कभी नहीं रहा है। भारत की विदेशी सरकार ने कन्ट्रोल आदि के बहाने पूंजीपति वर्ग को इतना मजबूत और संघटित कर दिया है कि आज उनका गुट्ट प्रायः अलंघनीय है। यूरप के आडम्बर और चिकनाहट से तथा उसकी क्षणिक सफलता से प्रभावित भारतीय नेतृत्व देश में व्यापक औद्योगीकरण के मोह में उसी पूंजीपति वर्ग की ओर आकर्षित होता जा रहा है। वह यह सोचता है कि इन्हीं के पास साधन तथा कौशल है, अतः इन्हीं को इस्तेमाल करके बाद को इनपर कन्ट्रोल कर लिया जायगा। उधर पूंजीपति वर्ग इस विश्वास से कि उन्हें जननायकों की सहायता तो प्राप्त होगी ही वे अपने उद्योगों को दृढ़ और व्यापक बनाने के उद्देश्य से अधिक पूंजी पाने के लिए यूरप और अमरीका के पूंजी-पतियों के हाथ फंसते जा रहे हैं। यही कारण है कि बिड़ला आदि देश के अनेक पूँजीपति यूरप और अमरीका के पूंजी-पतियों से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए जब वहां जा रहे थे तो गान्धीजी ने मुल्क को चेतावनी दी थी कि ये सब शर्मनाक सौदा करने जा रहे हैं। इस प्रकार जब देश के औद्योगीकरण के बहाने स्वदेशी और विदेशी पूंजीपतियों

का गंठबन्धन हो जायगा तो उस पूंजीपति गुट्ट के लिए हमारे ही नेतृत्व में से एकआध महत्त्वाकांक्षी अधिनायक ढूंढ़ निकालना मुश्किल न होगा। जो लोग प्रजातन्त्रता की दिशा में गम्भीर विचार करते हैं वे भावी अधिनायक तन्त्रता के घने बादल की ओर देखें और मुल्क को सावधान करें। यही कारण है कि गान्धीजी आज सब काम छोड़कर विकेन्द्रित आर्थिक संगठन पर तथा जनता को अपने नेतृत्व से अपना स्वावलम्बी व्यवस्था का संघटन करने की ओर इतना जोर दे रहे हैं ताकि आने वाली अधिनायक तन्त्रता के खतरे से जनता अपनी रक्षा कर सके।

नवयुवको, आगे आओ

इस काम को करने के लिए गान्धी जी शिक्षित युवक और युवतियों को पुकार रहे हैं। आज जो देश व्यापी जन जागृति दिखाई दे रही है वह उन नौजवान शहीदों की कुर्बानी का फल है जिन्होंने आदर्श के लिए हंसते हंसते अपनी जान दे दी। आदर्श के लिए मरकर वे शहीद हुए और देश में विराट जागृति उन्होंने पैदा कर दी। गान्धी जी आज जन संगठन की ओर कदम उठा रहे हैं इसलिए आज उनकी मांग है जिन्दा शहीदों की जो अपनी जिन्दगी को अथाह जन समुद्र में डुबो सकें, जो अन्धकाराच्छन्न जनता के बीच अपने को दफना सकें, क्या भारत के नौजवान इस पुकार को सुनेंगे ?

चि० ग्रा० यो०

सारी सम्पत्ति थोड़े से लोगों के हाथ में पड़कर पूंजीवादी शोषण जारी रहे। मनुष्य अपनी आवश्यक

विकेन्द्रित आर्थिक व्यवस्था

रचनात्मक कार्य की ओर भावना

इधर साल भर से चर्खा और ग्रामोद्योग के प्रति भारत की जनता की दृष्टि विशेष रूप से आकृष्ट हुई है। प्रत्येक प्रान्त में चर्खा और ग्रामोद्योग का काम करने के लिए चेष्टा भी हो रही है। उसके पीछे कई भावनाएँ हैं। मुख्य भावना तो पिछली लड़ाई में जनता को आवश्यक सामान मिलने में कठिनाई के कारण ही पैदा हुई है। कुछ भावनाएँ सन् ४२ का आन्दोलन दब जाने के बाद कोई काम न रहने से अस्थायी रूप से खादी और ग्रामोद्योग का सहारा लेना जनता के पास पहुँचने की दिशा में है। पर जो लोग स्थायीरूप से खादी और ग्रामोद्योग का काम करना चाहते हैं उन्हें चर्खा और ग्रामोद्योग के पीछे बापू की विशेष विचारधारा समझ लेनी चाहिये। वस्तुतः बापू का इस कार्यक्रम के पीछे ग्राम स्वावलम्बन के आधार पर मानव समाज व्यवस्था की एक निश्चित योजना है। कार्यकर्ताओं को चर्खे के पीछे बापू की विचारधारा को शान्तिपूर्वक समझना चाहिये।

चर्खा का आदर्श

बापू ने अपने विचारों का स्पष्टीकरण 'हिन्द स्वराज' लिखते समय ही कर दिया था। फिर उन्हों ने भारत में

'हिन्दस्वराज्य' का व्यावहारिक रूप प्रकट किया। भारत की आजादी के लिए अहिंसक असहयोग आन्दोलन चलाया। उस आन्दोलन का मध्यबिन्दु चर्खा रखा। तब से २५ वर्ष बाद भी वे चर्खे की रट लगाते नहीं थकते क्योंकि बापू के लिए स्वराज्य की चेष्टा संसार में सत्य और अहिंसा की राज्यव्यवस्था कायम करने की चेष्टा मात्र है। येनकेन प्रकारेण अंग्रेजों को निकालकर आजाद होना ही उनका ध्येय नहीं है। वे तो देश को गुलामी के बन्धन से मुक्त करके भारत में और उसके द्वारा संसार में उस शान्तिमय और अहिंसात्मक समाज की स्थापना करना चाहते हैं जिसका वे स्वप्न देखते हैं और उसकी स्थापना वे चर्खा और ग्रामोद्योग द्वारा ही करना चाहते हैं। अतः उनके लिए चर्खा और ग्रामोद्योग स्वराज्य के लिए जनता को जागृत और संघटित करने और अहिंसात्मक शोषणहीन तथा मानव कल्याणकारी समाज की स्थापना करने के साधन हैं। राष्ट्रीय ध्वजा पर अंकित चर्खा इसी अहिंसात्मक समाज-व्यवस्था का द्योतक है।

चर्खा अहिंसक विद्रोह का प्रतीक

संसार जिस पूंजीवाद की आग में जल रहा है बापू का चर्खा उसी के अहिंसक विद्रोह का प्रतीक है। यूरोप में स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व का सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ और उसी के आधार पर लोकतन्त्र की

कल्पना की गयी जिसमें व्यक्ति मात्र की स्वतन्त्रता स्वीकार करते हुए किसी विशेष व्यक्ति गुट या दल के शासन, प्रभुता और हित के स्थान पर अधिकाधिक लोगों का हित ही नैतिक आदर्श के रूप में स्थापित किया गया। लोकतन्त्र के सिद्धान्त का यह उदय अहिंसक वृत्ति का ही प्रदर्शक था।

पूंजीवाद से हिंसा की स्थापना

मानव इतिहास के आदिकाल में जब मनुष्य जीवन में कोई संघटन या व्यवस्था नहीं थी और जब संसार में मत्स्यन्याय का ही बोलबाला था तब स्वभावतः हिंसा तथा बर्बरता के कारण मनुष्य जीवन की अनिश्चितता से परेशान होकर सरदार प्रथा तथा राजसंस्था की गयी होगी। यह व्यवस्था भी शान्तिमय समाज व्यवस्था का प्रयास ही रहा होगा। मनुष्य स्वभावतः ही शान्तिप्रिय जीव है। केन्द्र व्यवस्था की शृंखला को देखकर वह निश्चिन्त हुआ। शासकवर्ग इसका फायदा उठाने लगा और केन्द्रवाद शासन शक्ति की पूंजीभूत शक्ति द्वारा आगे बढ़कर आर्थिक क्षेत्र में भी फैलाया और पूंजीवाद की सृष्टि हुई। फिर तो पूंजीवाद के केन्द्रवाद में मनुष्य जीवन की सारी आवश्यकताओं के लिए केन्द्रियवर्ग का मुंहताज होगया। फलतः मनुष्य ने हिंसा, अशान्ति और अनिश्चितता से बचने के लिए जिस केन्द्रवाद की रचना की थी वही व्यवस्था वर्ग शासन और पूंजीवाद के रूप में

मनुष्य को फिरसे हिंसा और शोषण का शिकार बनाने का साधन होगयी। मानव समाज ने इस बात को देखा और तब उसने लोकतन्त्र के आविष्कार से शासन सभा को विकेन्द्रित करके व्यवस्थित स्वतन्त्रता को प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की। शासन सत्ता के विकेन्द्रित होने के साथ ही आर्थिक क्षेत्र में स्वावलम्बन तथा स्वतन्त्रता का कायम होना सहज तथा स्वाभाविक ही था लेकिन दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं हो सका।

वाष्प यन्त्र के आविष्कार से वर्गभेद में वृद्धि

ठीक जिस समय जनतन्त्र के रूप में अहिंसक वृत्ति का क्रमिक विकास हो रहा था उसी समय भौतिक विज्ञान की कृपा से वाष्प यन्त्र का आविष्कार हुआ जिससे उत्पत्ति के साधनों और तरीकों में अकल्पित परिवर्तन हो गया। युरोप में औद्योगिक प्रगति हुई और पूंजीवाद ने अपनी जड़ मजबूत करली। अब तक केन्द्र-वाद ने जिस पूंजीवाद की सृष्टि की थी उसकी सत्ता केवल व्यवस्था तक ही सीमित रही। उत्पादन के साधन फिर भी बहुत कुछ उत्पादक के हाथ में रहे। यदि उत्पत्ति का तरीका उसी तरह बना रहता तो जनतन्त्र के वायु-मंडल के विकास के साथ साथ उत्पादक वर्ग अपनी-अपनी कला तथा साधन द्वारा स्वावलम्बन के आधार पर स्वतन्त्र होजाता. पर वाष्पयन्त्र के बनने के साथ साथ पूंजीवाद ने उत्पत्ति के साधनों को इस प्रकार केन्द्रीय-

भूत करने का मौका मिला। इसने उत्पादकों को उत्पत्ति के यन्त्र तथा कला से वंचित कर दिया और जिस प्रकार शासन सत्ता द्वारा निरस्त्रीकरण हो जाने से जनसमूह को सत्ता के चंगुल में बुरी तरह फंस जाना पड़ता है उसी तरह साधन और कला के अधिकार से वंचित होकर जनता का केन्द्रिय सत्ता से छुटकारा पाना कठिन होगया पर वाष्प यन्त्र के आविष्कार के साथ साथ पूंजीवाद को उत्पत्ति के साधनों को केन्द्रित करने का मौका मिला। फिर सारी व्यवस्था केन्द्रियकरण की ओर बढ़ने लगी और जनतन्त्र नाम मात्र का ही रह गया। उत्पादन के केन्द्रित होने से यह आवश्यक होगया कि समाज की सारी शक्ति केन्द्रित की जाय। समाज की सारी शक्ति केन्द्रित शक्ति का मुहताज होजाती है, फलतः लोकतन्त्र के रूप में जनमी स्वतन्त्रता कुंठित होजाती है। वर्ग प्रभुता, वर्ग शासन और वर्गहित मुख्य होगया। सारी शक्ति, सारा वैभव और उनकी प्राप्ति के साधनों का एक वर्ग के हाथ में केन्द्रित होना सार्वजनिक सामूहिक स्वतन्त्रता एवं अधिकार के निर्दलन में ही सम्भव था।

विकेन्द्रीकरण ही एकमात्र उपाय

उत्पत्ति के साधनों में परिवर्तन के साथ साथ समाज के संघटन में भी परिवर्तन होगया। इसी कारण समाज की उत्पादन प्रणाली केन्द्रित होने के साथ साथ शासन की व्यवस्था भी केन्द्रीभूत सत्ता के अधीन होगयी और

क्रमशः सारा समाजतन्त्र केन्द्रित होते होते आज संसार भर में तानाशाही का बोलबाला होगया। बापू ने मानव समाज की यह गति देखी। उन्होंने देखा कि शासन के केन्द्रीकरण के साथ समाज का केन्द्रीकरण और मानव स्वतन्त्रता का लोप और मानव का शोषण भी इसी केन्द्रीकरण का फल है और ऐसी स्थिति में अधिकाधिक हिंसा और पशुबल का आश्रय लिया जाता है। अतः बापू ने मानव उद्धार करने के लिए जिस मूल से इस अनर्थ का सिलसिला जारी हुआ है और उसमें वृद्धि हुई है उसीका निराकरण करने का निश्चय किया है। जिस दानव ने आकर जनतन्त्र को शैशवावस्था में ही गला घोंटकर मार दिया उस दानव का नाश हुए बिना स्वतन्त्रता की स्थापना होना असम्भव है। वाष्पयंत्र की उत्पादन प्रणाली से उत्पन्न केन्द्रीकरण को विघटित किये बिना शासनतन्त्र की केन्द्रीभूत शक्ति न छूटेगी, और जबतक ऐसा नहीं होगा तबतक न हिंसा का लोप होगा और न मनुष्य शोषण तथा पराधीनता से मुक्त होगा। फलतः यह आवश्यक है कि उत्पत्ति की पद्धति का विकेन्द्रीकरण किया जाय और उसके आधार पर ऐसे स्वावलम्बी समाज की रचना की जाय जिसमें उत्पत्ति के साधन उत्पादक के हाथ में रहें, और उत्पादित पदार्थ उत्पादक की सम्पत्ति हों। न उत्पादन के साधनों का केन्द्रीकरण हो, न प्रणाली केन्द्रित हो और

न सारी सम्पत्ति थोड़ेसे लोगों के हाथ में पड़कर पूंजीवादी शोषण जारी रहे। मनुष्य अपनी आवश्यक वस्तुओं के लिए यथासम्भव परवश न होकर स्वतन्त्र रहे। ऐसे विकेन्द्रित समाज में वर्गों के हित परिवर्तित हो जायंगे। फलतः न केन्द्रीभूत शासनतन्त्र की आवश्यकता रहेगी, न हिंसा की। केन्द्रतन्त्र के विकेन्द्रीकरण के विना मनुष्य की प्रगति और स्वतन्त्रता सम्भव नहीं है क्योंकि उत्पत्ति और इसके साथ शासन के केन्द्रित होने का मतलब शक्ति को केन्द्रित करना है। शक्ति को केन्द्रित करने के बाद अगर किसी किस्म के वैज्ञानिक आधार पर कानूनी हक से सम्पत्ति पर जनसाधारण का स्वामित्व स्थापित किया जाय तो वैसा स्वामित्व सांकेतिक होगा, वास्तविक नहीं। फिर मनुष्य में अनुकूल परिस्थिति पर पहुँचते ही प्रभुत्व करने की इच्छा बलवती होती है। इस वृत्ति के कारण उत्पत्ति के साधन के वैज्ञानिक मालिक जब अपनी केन्द्रित सम्पत्ति के इन्तजाम के लिए व्यवस्थापक वर्ग को कायम करेंगे तो वही वर्ग अपने मालिक प्रजावर्ग पर हुकूमत करने लगेगा। इस प्रकार आवश्यक सामान की उत्पत्ति के तरीकों को केन्द्रित केवल मिल्कियत की धारणा में सुधार करने पर उत्पत्ति के साधनों पर पूंजीपति के कब्जे के स्थान पर व्यवस्थापकवर्ग का कब्जा हो जायगा। साधनों पर कब्जा पाने की स्थिति पर आकर वे अपने स्वभाव के

कारण प्रजापर प्रभुत्व जमाना शुरू कर देंगे। कुछ लोग कह सकते हैं कि जिस प्रकार मनुष्य में प्रभुत्व जमाने की इच्छा बलवती होती है उसीप्रकार मनुष्य में स्वतंत्र रहने की बलवती इच्छा होती है और जिस समय व्यवस्थापक वर्ग प्रभुत्व करने लगेगा उसी समय प्रजा स्वतन्त्र रहने के लिए उससे लड़ने लग जायगी। हम इसे स्वीकार करते हैं लेकिन प्रभुत्व करने की इच्छा स्वतन्त्र रहने की इच्छा आदि तमाम इच्छाओं से बलवती इच्छा जिन्दा रहने की होती है। जब जिन्दा रहने का साधन केन्द्रीय व्यवस्थापक वर्ग के कब्जे में होता है तब प्रजा को मजबूर होकर प्रभुत्व से समझौता करके किसी किस्म के मन बहलाव की स्वतन्त्रता को मानकर जिन्दा रहने के साधनों को प्राप्त करना पड़ता है। इस प्रकार की वैधानिक स्वतन्त्रता नाममात्र की ही रह जाती है। इसीलिये जबतक उत्पत्ति के प्रकार में मौलिक परिवर्तन नहीं होगा तबतक लोकतन्त्रता, प्रजा की स्वतन्त्रता आदि बातें कल्पनामात्र रह जायंगी। जब उत्पादन के साधन इस प्रकार विकेन्द्रित कर दिये जायेंगे और इस प्रकार जब उत्पत्ति सम्पत्ति का सामाजिक [illegible] स्वभावतः [illegible] होगा तो पूंजी का भी [illegible] होजायगा। इसलिये आप [illegible] है [illegible]

[illegible]

गाँवों में काम करने में हमारा दृष्टिकोण

आज हम चर्खा और ग्रामोद्योग का जो कार्यक्रम चला रहे हैं वह कार्यक्रम बापूजी की उसी कल्पना का प्रतिनिधित्व कर रहा है। वह आधुनिक आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक केन्द्रवाद के विरुद्ध विद्रोह की सजीव मूर्ति है, जो उत्पादन और शासनतन्त्र का विकेन्द्रीकरण करके नये आधारों पर नये समाज की रचना की ओर न केवल संकेत करता है बल्कि उनका मार्ग प्रस्तुत करता है। हमारे चर्खा और ग्रामोद्योग के पीछे बापू की यही सारी विचारधारा दौड़ती है। हममें से जो लोग ग्रामोद्योग के पक्षपाती हैं उन्हें बापू की उपर्युक्त विचारधारा को समझकर इसका सारा कार्यक्रम, योजना की सारी बुनियादी प्रेरणा उसी विचारधारा से लेनी होगी। अपनी कार्यपद्धति तथा दृष्टिकोण को उसी सामाजिक सिद्धान्त की पूर्ति के अनुकूल ही बनाना होगा। भविष्य में हमको सारी ग्राम सुधार योजना भी इसी आधार पर बनानी होगी। अगर ग्राम उद्योग का काम केन्द्रिय उद्योग के साथ निश्चित करके मजबूरी की परिस्थिति में केवल उत्पत्ति की तादाद बढ़ाने की नीयत से किया जायगा तो न केवल यह कार्यक्रम व्यर्थ होगा बल्कि राष्ट्र की शक्ति और सामर्थ्य का अपव्यय भी

होगा, क्योंकि जब एक ही वस्तु की उत्पत्ति के लिए दोनों तरीकों से काम चलता रहेगा तो प्रथमतः जन-साधारण के सामने कोई निश्चित सामाजिक और आर्थिक सिद्धान्त नहीं रह जायगा। अतः भारत के लिए यही श्रेयस्कर होगा कि हम इधर उधर की सारी बातों को छोड़कर बापू के विचारों को सामने रखकर ही अपनी योजनाएँ बनायें और उन्हींके अनुसार काम करें।

